पारिस्थितिकी दर्शन में सतत विकास की अवधारणा

डॉ. नीलम
व्याख्याता दर्शनशास्त्र
से.मु.मा. राज. कन्या महाविद्यालय,
भीलवाडा (राज.)

सरांशः– पारिस्थितिकी दर्शन 1970 के दशक में विकसित एक आधुनिक अवधारणा है। पारिस्थितिकी दर्शन मानवीय जीवन के विविध क्षेत्रों में होने वाले विकास के परिणामस्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन कर इनका समुचित समाधान प्रस्तुत करता है। विकास मानवीय सभ्यता की प्रगतिशीलता का परिचायक है, किन्तु विकास का मापदण्ड केवल भौतिक एवं आर्थिक लाभ नहीं होना चाहिए। विकास की प्रचलित प्रक्रिया एक अत्यन्त विचारणीय विषय है। इसमें आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करते हुए भविष्य की उपेक्षा की जा रही है। विकास की यह एकांगी प्रक्रिया पर्यावरणीय हितों की दृष्टि से अनुचित एवं विपरीतगामी है। प्रचलित विकास की प्रक्रिया से उत्पन्न गम्भीर पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु पारिस्थितिकी दर्शन सतत विकास को प्राथमिकता देता है। सतत विकास की प्रक्रिया में वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति का भावी पीढ़ी के हितों के साथ उचित सामंजस्य किया गया है। पारिस्थितिकी दर्शन द्वारा समर्थित सतत विकास की प्रक्रिया में पर्यावरणीय हितों के साथ–साथ सम्पूर्ण प्राणी जगत के सर्वांगीण कल्याण की भावना अन्तर्निहित है। इसमें मनुष्य अपने सामाजिक परिवेश से आगे बढ़कर प्राणिमात्र के सर्वांगीण कल्याण की कामना करता है। पारिस्थितिकी दर्शन सतत विकास के रूप में एक समन्वित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसमें पर्यावरण के प्रति कृतज्ञता एवं अनुग्रहशीलता का भाव है, इसके प्रति भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं ।

संकेत शब्द :– (Keywords) पारिस्थितिकी दर्शन, आदर्शमूलक विज्ञान, पारिस्थितिकी विज्ञान, सतत विकास, पुरा (Pura) अपरिग्रह, स्वार्थवाद–परार्थवाद।

सामान्य परिचय :– पारिस्थितिकी दर्शन एक आधुनिक संकल्पना है, जिसका विकास 1970 के दशक में पाश्चात्य जगत में हुआ। वर्तमान समय में इस संकल्पना ने एक विश्वव्यापी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया है। इसे पर्यावरण दर्शन (Philosophy of Environment) के रूप में भी जाना जाता है। पारिस्थितिकी दर्शन, दर्शनशास्त्र की एक शाखा है। यह एक आदर्शमूलक विज्ञान है। यह मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास का मानवीय–हित को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन करता है। विकास एवं पर्यावरण के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध है। पारिस्थितिकी दर्शन मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में होने वाले विकास का मानवीय–हित और पर्यावरण के सम्बन्ध में अध्ययन करता है। डॉ. âदय नारायण मिश्र के अनुसार – "पारिस्थितिकी दर्शन, दर्शन की वह शाखा है, जो मानव जीवन और उससे सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास का मानव–हित के परिपेक्ष्य में अध्ययन करती है। दर्शन की यह शाखा इसका अध्ययन करती है कि जो विकास चारों ओर हो रहा है, क्या उससे प्राकृतिक धरोहर का क्षरण तो नहीं हो रहा है ? या सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास क्या मानव–हित की दृष्टि से उपयुक्त है ? यदि नहीं है तो विकास की सही दिशा क्या हो, जिससे मानव जीवन या जीव जगत का विनाश न हो। विकास ऐसा हो जो संपोष्य, सुस्थिर या रक्षणकारी हो ।"[1] स्पष्ट है कि सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र एवं विकास

प्रक्रिया के प्रति मानवीय नैतिक कर्तव्यों का बोध एवं इनका सफल क्रियान्वयन ही पारिस्थितिकी दर्शन का मुख्य उद्देश्य है।

पारिस्थितिकी विज्ञान तथा पारिस्थितिकी दर्शन :– पारिस्थितिकी विज्ञान में पर्यावरण और जीवों के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में पारिस्थितिकी के अन्तर्गत वनस्पति एवं जीव–जन्तुओं का ही अध्ययन किया जाता था, किन्तु आधुनिक युग में इसकी शाखाओं का विस्तार हुआ है। अब यह व्यावहारिक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों के मध्य एक समन्वयक की भूमिका एवं मानवीय क्रियाओं का पर्यावरण पर प्रभाव इसके अध्ययन का केन्द्रिय विषय है। यह कारण है कि इसकी नवीन शाखाएँ एवं उपशाखाएँ विकसित हो रही हैं। उदाहरणार्थ मानवीय या सामाजिक पारिस्थितिकी, सामुदायिक पारिस्थितिकी, भौगोलिक पारिस्थितिकी इत्यादि। "पारिस्थितिकी को जर्मन भाषा में 'Oecology' एवं ग्रीक भाषा में 'Oekologie' कहते हैं। इसका प्रयोग सर्वप्रथम अन्सर्ट हैकल ने किया था। 'Oekologie' शब्द व्युत्पति की दृष्टि से दो ग्रीक शब्दों 'Oikos' और 'Logos' से बना है, जिनका अर्थ क्रमशः घर (Habitat) और अध्ययन (Study) है। इस प्रकार शाब्दिक व्युत्पति की दृष्टि से इसका अर्थ घर का अध्ययन (The Study of Habitat) है। पर्यावरण प्रत्येक जीवधारी का घर है, अतः जीवधारी का उसके पर्यावरण के सम्बन्ध में अध्ययन पारिस्थितिकी विज्ञान है।"[2] Oecology के लिए अंग्रेजी भाषा में 'Ecology' शब्द प्रयोग किया जाता है। पारिस्थितिकी विज्ञान एक वर्णनमूलक विज्ञान (Descriptive Science) है, जो पर्यावरण के विषय में विभिन्न प्रकार के तथ्यों की सूचना देती है। इसके विपरीत पारिस्थितिकी दर्शन आदर्शमूलक विज्ञान (Normative Science) है। यह मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास एवं पर्यावरण का मानव–हित के आधार पर मूल्यांकन करता है। इसके लिये यह पारिस्थितिकी विज्ञान द्वारा प्राप्त तथ्यों का उपयोग करता है। इससे स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी विज्ञान प्रथम श्रेणी की खोज (First Order enquiry) है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन द्वितीय श्रेणी की खोज (Second Order enquiry) है। प्रथम श्रेणी की खोज होने के कारण पारिस्थितिकी विज्ञान तथ्यात्मक विज्ञान है, इसका सम्बन्ध क्या (What) से है। इसके विपरीत पारिस्थितिकी दर्शन आदर्शमूलक होने के कारण इसका सम्बन्ध चाहिए (Should) से है। पर्यावरण प्राणीजगत एवं वनस्पति जगत का घर है। पर्यावरण कैसा है ? इसका ज्ञान पारिस्थितिकी विज्ञान से होता है। किन्तु प्राणियों एवं वनस्पतियों के हित में पर्यावरण को कैसा होना चाहिए। इसका ज्ञान पारिस्थितिकी दर्शन कराता है। पारिस्थितिकी विज्ञान की प)ति वैज्ञानिक है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन की प)ति दार्शनिक है। पारिस्थितिकी विज्ञान विश्लेषणात्मक दृष्टि से पर्यावरण का अध्ययन करता है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन इसका अध्ययन संश्लेषणात्मक दृष्टि से करता है। इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकी विज्ञान पर्यावरण का एकांगी अध्ययन है, जबकि पारिस्थितिकी दर्शन उसका समग्र अध्ययन है। इन विभिन्नताओं के बावजूद इन दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध है पारिस्थितिकी विज्ञान पर्यावरण के विषय में तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करता है। पारिस्थितिकी दर्शन इस सामग्री का संश्लेषणात्मक अध्ययन करके मानव एवं पर्यावरण के विषय में कुछ मूल्यात्मक निष्कर्ष निकलता है। इस प्रकार पारिस्थितिकी दर्शन एक समन्वयात्मक, संश्लेषणात्मक और आदर्शमूलक विज्ञान है, जो जीवधारियों तथा पर्यावरण के अन्तसम्बन्धों के विषय में मूल्यांकनपरक अध्ययन करता है।

विकास की प्रचलित अवधारणा एक चुनौती :– निरन्तर नवीन विकास के प्रतिमान मानवीय सभ्यता की प्रगतिशीलता के परिचायक हैं। अपनी इस प्रवृति के परिणामस्वरूप मानवीय सभ्यता विकास के वर्तमान स्तर तक पहुँच गयी है। मानवीय सभ्यता के विकास के विभिन्न चरणों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो

जाता है कि जहाँ पर्यावरण ने विकास की इन विभिन्न गतिविधियों में सहायता प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय गुणवत्ता एवं अस्तित्व भी इन गतिविधियों से अनेक प्रकार से प्रभावित हुआ है। जब तक यह प्रभाव सीमित अथवा सामान्य होता है, उससे पारिस्थितिकी तन्त्र पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, किन्तु जब यह अधिक सघन एवं विस्तृत होने लगता है, तो पर्यावरण में विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक एवं तकनीकी के अभूतपूर्व विकास ने मानवीय प्रगति को नवीन आयाम प्रदान किये हैं। किन्तु विकास की इस मानव केन्द्रित अवधारणा से सन्तुलित पर्यावरण पर विभिन्न प्रतिकूल प्रभाव डालें हैं। यह प्रतिकूल प्रभाव पर्यावरणीय असन्तुलन एवं प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर âास, हरितगृह–गैसों के प्रभाव में वृ) के कारण पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृ), ओजोन प्रभाव में न्यूनता, ओजोन–छिद्र की समस्या, अतिदृष्टि के कारण बाढ़ और अनावृष्टि के कारण सुखा एवं अकाल के रूप में दिखाई दे रहा है।

विकास के कारण पारिस्थितिकी तन्त्र पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव और पर्यावरण में आने वाली विकृतियाँ आज सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक गम्भीर चुनौती है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या विकास को रोक दिया जाये ? यदि नहीं तो विकास की सही दिशा क्या हो, जिससे पर्यावरण और पारिस्थितिकी तन्त्र पर कोई विपरीत प्रभाव न हो ? इस प्रश्न के समाधान में पारिस्थितिकी दर्शन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मानव जीवन और जगत के विषय में बौ)िक, नैतिक या मूल्यात्मक विवेचन प्रस्तुत करना दर्शन प्रमुख उद्देश्य है। इस दृष्टि से वर्तमान शताब्दी में मानव जीवन जिस गम्भीर संकट से गुजर रहा है, उस पर विचार करना दर्शन का प्रमुख लक्ष्य हो गया है। "यह सत्य है विकास का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि विकास को रोक दिया जाये। आवश्यकता इस बात की है कि विकास को सही दिशा दी जाये, उसे मानवोपयोगी बनाया जाये तथा उसका पर्यावरण पर कुप्रभाव न हो। यह कार्य सम्पूर्ण विश्व को सामूहिक रूप से करना है, इसमें वैज्ञानिको, शोधकर्ताओं के साथ–साथ प्रषासकों एवं सामान्य जनता को भी योगदान देना है। यह कार्य क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय सीमाओं से हटकर रह कर वैश्विक स्तर पर करना आवश्यक है, तभी विकास की सार्थकता है।"[3] मानवोपयोगी विकास की सही दिशा "जीवन धारण करने योग्य विकास" पर आधारित है। विकास की इस अवधारणा को ही सुस्थिर विकास या सतत विकास (Sustainable Development) कहते हैं। चिन्तकों एवं दार्शनिको का मानना है कि ऐसा विकास पारिस्थितिकी तन्त्र को दृष्टिगत रखते हुए होगा। "यह ऐसा विकास होगा जो मानव जीवन की उत्तमता को, पर्यावरण को बिना हानि पहुँचाये होगा। यह विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके होगा या ऐसे तकनीकों का विकास करके होगा, जिससे पर्यावरण की क्षति को रोका जा सके। इस जीवनदायी विकास में पारिस्थितिकी के साथ–साथ मानव जीवन के विभिन्न आयामों का भी ध्यान रखना होगा। उदाहरण के लिये जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों का भी ध्यान रखना होगा। सारांश में पारिस्थितिकी के दर्शन का मूल बिन्दु मानव–हित के लिये ऐसा विकास होगा, जिससे पारिस्थितिकी की रक्षा हो क्योंकि पारिस्थितिकी और पर्यावरण के विनाश से मानव या जीव–जगत की रक्षा सम्भव नहीं है।"[4]

सतत् विकास की अवधारणा :– सतत विकास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1987 में पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग की अध्यक्षता करते हुए इवा बालफोर और वेस जेकसन ने किया था। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट में सतत विकास (Sustainable Development) को इस प्रकार परिभाषित किया है– "सतत

विकास वह है, जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति, भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना समझौता किये करता है। इस परिभाषा में दो अवधारणाएँ निहित है– प्रथम आवश्यकताओं की अवधारणा है, विशेष रूप से विश्व के गरीबों की अनिवार्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कहा गया है, और जिन्हे ही प्रमुखता देना है । द्वितीय सीमाओं का विचार है, इसमें यह कहा गया है कि राज्य प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठनों पर सीमा के विचार को लगू करें, जिससे वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये पर्यावरण की क्षमता या योग्यता बनी रहे।"[5] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सतत विकास का प्रमुख उद्देश्य मानव समाज के भविष्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। पारिस्थितिकी तन्त्र समस्त प्राणियों के लिए धरोहर स्वरूप है। "धरोहर" शब्द में पारिस्थितिकी तन्त्र के प्रति संरक्षण का भाव निहित है। यह धरोहर पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित की जानी चाहिए। सतत विकासवादी विकास के विषय में समन्वित एवं समग्र दृष्टिकोण अपनाते हैं। ये वर्तमान विकास को भविष्य की सुरक्षा के साथ जोड़ना चाहते हैं। इनके मतानुसार विकास की वर्तमान अवधारणा त्रुटिपूर्ण है, जो मनुष्य की आर्थिक समस्या का तो समाधान करती है, किन्तु यह पर्यावरण को प्रदूषित कर अनेक समस्याओं को जन्म देती है। सतत विकासवाद इस मत का समर्थक है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें, किन्तु उसका यह कर्तव्य भी है कि वह ऐसा करके भविष्य के अस्तित्व को संकटग्रस्त न बनायें।

विकास की वर्तमान प्रक्रिया एक अत्यन्त विचारणीय विषय है। इसमें विज्ञान और तकनीकी के माध्यम से भविष्य की उपेक्षा करते हुए विकास पर बल दिया जा रहा है। यह विकास की एकांगी और विपरीतगामी प्रक्रिया है। आज मनुष्य प्रकृति पर अपना नियन्त्रण कायम करने का प्रयास करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का अनियन्त्रित, अविवेकपूर्ण अदूरदर्शी एवं विनाशकारी दोहन कर रहा है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर मनुष्य को उपभोक्तावादी, सुखवादी एवं भोगवादी बना रही है, वहीं दूसरी ओर इसके कारण प्राकृतिक संसाधनों के निरन्तर क्षतिग्रस्त होने से पारिस्थितिकी तन्त्र में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। परिणामतः जलवायु परिवर्तन जैसी अत्यन्त गम्भीर समस्या सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए गम्भीर संकट के रूप में हमारे समक्ष है। पारिस्थितिकी दर्शन विकास के विषय में समन्वित एवं समग्र दृष्किोण अपनाते हुए वर्तमान विकास की प्रक्रिया को भविष्य की सुरक्षा से जोडना चाहता है। सतत विकास एक संयमित प्रक्रिया है। इसमें भारतीय संस्कृति में स्वीकृत त्याग, संयम एवं अपरिग्रह को समन्वित करने की आवश्यकता है। हमें प्रकृति के प्रति अनुग्रही होना चाहिए। प्रकृति से उतना ही ग्रहण करना चाहिए जितना हम उसे पुनः वापस कर सकें । यदि हम विकास की प्रक्रिया हेतु वनों का दोहन करते है, तो यह हमारा परम कर्तव्य है कि हम वृक्षारोपण की प्रवृत्ति को भी स्वयं में विकसित करें। भारतीय चिन्तन परम्परा में प्राप्त शान्तिपाठ ओम द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पर्यावरण एवं मनुष्य के मध्य तादात्म्य का सूचक है। पुनः "पृथ्वी का पुत्र हूँ" (माता भूमिः पुत्रों॰हं पृथिव्याः) यह वैदिक दृष्टिकोण मानव को पर्यावरण के साथ समन्वय स्थापित करने की प्रेरणा देता है। अतः पारिस्थितिकी दर्शन पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु सतत विकास का जो समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, उसमें पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनम्रता एवं एकरूपता का भाव है। सतत विकास की प्रक्रिया के सफल क्रियान्वयन हेतु कुछ प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं :–

- पर्यावरणीय संकट एक वैश्विक समस्या है। सतत विकास की प्रक्रिया हेतु सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को एक इकाई के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है। हमें यह स्वीकार करना

होगा कि जलवायु परिवर्तन किसी विशेष देश की समस्या न होकर एक वैश्विक समस्या है। जैसे कुछ विकसित राष्ट्र हरितग्रह प्रभाव वाली गैसों का उत्सर्जन कर रहें हैं, किन्तु तापमान सम्पूर्ण विश्व का बढ़ रहा है। पुनः ओजोन परत को क्षतिग्रस्त करने वाली गैसों का उत्सर्जन अधिकांश विकसित राष्ट्र कर रहें है, किन्तु इसका दुष्परिणाम सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित कर रहा है। अतः पर्यावरण के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है ।

- ❖ वर्तमान पारिस्थितियों में विकास की प्रक्रिया में उर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परागत उर्जा के सीमित साधनों में देखते हुए, उर्जा के नवीन वैकल्पिक स्त्रोतों के विकास हेतु शोध एवं अनुसंधान पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस हेतु नवीन पर्यावरण संरक्षण तकनीक के अन्वेषण एवं इसका सम्पूर्ण विश्व में सफल क्रियान्वयन आवश्यक है, क्योंकि पर्यावरण संकट मानवीय अस्तित्व से जुडा है।
- ❖ नगरीकरण एवं ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर तीव्रगति से हो रहा पलायन पर्यावरणीय समस्याओं का प्रमुख कारण हें अतः विकास की प्रक्रिया को ग्रामीणोन्मुख बनाना होगा, जिससे नगरीय सुविधाओं का विस्तार गांवों में सम्भव हो सके। इस हेतु महान वैज्ञानिक एवं भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा प्रस्तावित (PURA) (पीयूआरए :– प्रोविजन ऑफ अर्बन एमीनिटीज इन रूरल एरिया) मॉडल अपनाने की आवश्यकता है।
- ❖ विकास की प्रक्रिया हेतु संचालित विभिन्न परियोजनाओं के क्रियान्वयन का निर्णय लेने से पूर्व इस विषय पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि इनके पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तन्त्र पर क्या प्रभाव होगें। किसी भी परियोजना के सै)ान्तिक पक्ष की अपेक्षा उसके व्यवहारिक पक्ष पर विचार करने की आवश्यकता अधिक है। इस हेतु यह आवश्यक है कि त्वरित लाभ के स्थान पर दूरगामी दुष्परिणमों को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।
- ❖ प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य मानवीय जीवन में गुणवत्ता का निरन्तर समावेश करने से है। यह गुणवत्ता सामाजिक मानदण्ड पर निर्भर करती है। जिस समाज के आदर्श उच्च होते हैं। उस समाज का जीवन गुणात्मक रूप से श्रेष्ठ होता है। सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से उपभोक्तावाद से अपरिग्रह की प्रवृति और स्वार्थवाद से परार्थवाद की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है। स्वार्थ एवं परार्थ में उचित समन्वय के द्वारा ही सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा सम्भव हैं ।
- ❖ पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु इसके प्रति जनचेतना का निरन्तर प्रचार–प्रसार आवश्यक है। पर्यावरणीय चेतना जिनती अधिक होगी, उतना ही विकास सुस्थिर और सतत होगा। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जनचेतना औद्योगिक, राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर होनी चाहिए। इस हेतु राज्य के प्रशासकीय–तन्त्र को स्वयं संगठनों के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। अन्य सामाजिक संस्थाओं जैसे– परिवार, विद्यालय और धार्मिक संगठनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे हमारी युवा पीढी में पर्यावरण के प्रति समादर की भावना विकसित करने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

निष्कर्ष :– पारिस्थितिकी दर्शन प्रचलित विकास से उत्पन्न गम्भीर पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु सतत विकास की प्रक्रिया को प्राथमिकता देता है। सतत विकास की प्रक्रिया प्रचलित विकास की भांति एकांगी एवं पर्यावरण के प्रति विपरितगामी नहीं है। केवल अर्थ ही विकास का मानदण्ड नहीं है। सतत विकास में सर्वांगीण विकास के अनतर्गत प्रकृति से लेकर जीव–जगत, पशु–पक्षियों, कीट–पतंगो एवं

पेड़–पौधों की सुरक्षा, संवर्धन एवं इनके अस्तित्व को कायम रखने का प्रयास किया जाता है। इसमें मनुष्य अपने सामाजिक परिवेश से आगे बढ़कर सम्पूर्ण प्राणी जगत के सर्वांगीण कल्याण की कामना करता है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही चिन्तन परम्पराओं में सतत विकास की महत्ता को स्वीकार किया गया है। पाश्चात्य चिन्तन परम्परा में जहाँ पर्यावरण के प्रति मैत्रीभाव विद्यमान है, वहीं भारतीय चिन्तन परम्परा में इससे अधिक प्रकृति के प्रति श्र)ा, आस्था, विश्वास एवं उपासना का भाव निहित है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को दैवीय स्वरूप प्राप्त है। पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु हमें प्राचीन भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रचलित त्याग, संयम एवं अपरिग्रह जैसे उच्च आदर्शों को सतत विकास की अवधारणा में समाहित करने की आवश्यकता है। पारिस्थितिकी दर्शन विकास का समन्वित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण में पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनयशीलता एवं उपासना का भाव है, पर्यावरण के प्रति भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. डॉ. âदयनारायण मिश्र, सामाजिक–राजनीतिक दर्शन के नये आयाम, पारिस्थितिकी का दर्शन, पृष्ट संख्या –301 नवीन संस्करण 2005 शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।
2. डॉ. राममूर्ती पाठक, सामाजिक राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा, पारिस्थितिकी दर्शन, पृष्ट संख्या –279, अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद।
3. डॉ. हरिमोहन सक्सेना – पर्यावरण एवं प्रदूषण पृष्ट संख्या –183, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
4. डॉ. âदयनारायण मिश्र, सामाजिक–राजनीतिक दर्शन के नये आयाम, पारिस्थितिकी का दर्शन, पृष्ट संख्या –301 नवीन संस्करण 2005 शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।
5. (The World Commission for Environment and Development 1987:43)